

नाटक में रसाभिव्यक्ति: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

ऋतु वर्मा

(एम ए, नेट संस्कृत) शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, शिब्ली नेशनल पी0 जी0 कॉलेज, आजमगढ़।

Article Info

Volume 5, Issue 6

Page Number : 145-153

Publication Issue :

November-December-2022

Article History

Accepted : 01 Dec 2022

Published : 20 Dec 2022

शोधसारांश – सर्वप्रथम भरत मुनि ने अपने आकर-ग्रन्थ नाट्य-शास्त्र में 36 अध्यायों में नाट्य-शास्त्र का प्रमाणिक और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। नाट्य-शास्त्र का महत्व बताते हुए उनका कथन है कि विश्व का ऐसा कोई ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग (प्रयोग) और कर्म नहीं है, जो इसमें न आ जाता हो।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाटयेऽस्मिन् यत्र दृश्यते ॥ (ना0-1-116)

संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने काव्य को दो भागों में विभक्त किया है:-

(1) दृश्य, (2) श्रव्य।

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्

दृश्यं तत्राभिनेयं तदरूपारोपात्तु रूपकम् ॥ (सा0 द0 6-1)

मुख्य शब्द— नाटक, रसाभिव्यक्ति, ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग, कर्म, पारिभाषिक शब्द।

दृश्यकाव्य में रूपकों (नाटकों) तथा उपरूपकों का ग्रहण होता है, क्योंकि इनका अभिनय किया जाता है। ये दर्शकों के द्वारा देखे जाते हैं। नाटक के लिए संस्कृत में पारिभाषिक शब्द रूपक है, क्योंकि अभिनय की अवस्था में अभिनेता अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है। रूपक के ही 10 भेदों में से एक भेद नाटक है। रूपक के 10 भेद हैं और उपरूपक के 18। दस रूपकों के नाम हैं:- (1) नाटक, (2) प्रकरण, (3) भाण, (4) व्यायोग, (5) समवकार, (6) डिम, (7) ईहामृग, (8) अंक, (9) वीथी, (10) प्रहसन।

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।

ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश ॥ (सा0 द0 6-3)

इसी प्रकार नाट्यदर्पणकार' ने रूपक के बारह भेदों का वर्णन किया है, जब कि साहित्यदर्पणकार ने रूपक के दस' एवं उपरूपक के अट्ठारह' भेद किये हैं। यहाँ पर रूपक के दस भेद इस प्रकार से हैं-

1. नाटक
2. प्रकरण
3. भाण
4. व्यायोग
5. समवकार

6. डिम
7. ईहामृग
8. अंक
9. वीथी
10. प्रहसन

प्रमुख नाट्यशास्त्रीय मान्यताएँ :-

विश्वनाथ कृत 'साहित्यदर्पण' एवं धनंजय कृत 'दशरूपक' प्रभृति ग्रंथों में नाट्य शास्त्रीय मान्यताओं का विशद विवेचन किया गया है। संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

धनंजय के अनुसार नाटक में तीन तत्व होते हैं जिसके आधार पर उनका विभाजन होता है— वस्तु, नेता और रस। 'वस्तु नेता रसस्तेषां भेदक' इसमें 'वस्तु' का वर्णन विशेष महत्व रखता है, वस्तु को कथा, कथावस्तु, इतिवृत्त आदि नाम से जाना जाता है

वस्तु के भेदवस्तु या कथावस्तु को दो भागों में विभक्त किया गया है—

1. आधिकारिक
2. प्रासंगिक

“तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः”

अर्थात् आधिकारिक वह कथावस्तु है जो मुख्या कथावस्तु होती है। अधिकार का अर्थ है— फल का स्वामित्व अतः जो फल का स्वामी होता है अर्थात् नायक होता है, उससे सम्बन्ध कथानक आधिकारिक होता है। जैसे— मृच्छकटिक में चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम की कथा आधिकारिक (मुख्य) है।

प्रासंगिक वह कथा है जो गौणरूप से हो और मुख्या कथा का अंग हो।

जैसे— मृच्छकटिक में राजा पालक और आर्यक की कथा प्रासंगिक है।

प्रासंगिक कथा के भी भेद दो हैं — 1. पताका 2. प्रकरी। पताका उस कथा को कहते हैं जो नाटक में दूर तक चलती जाती है। इसका नायक दूसरा व्यक्ति होता है। वह मुख्य नायक का साथी होता है और गुणों में उससे न्यून होता है। इसके कार्य का उद्देश्य कोई स्वतंत्र फल नहीं होता है। यथा—रामायण में सुग्रीव की कथा छोटे-छोटे प्रसंगों या कथानकों को प्रकरी कहते हैं। जैसे— रामायण में सबरी आदि की कथाये सम्पूर्ण कथा वस्तु को तीन भागों में बाटा गया है—

1. प्रख्यात— जो इतिहास पर अवलम्बित हो।
2. उत्पाद्य— कवि द्वारा कल्पित होता है यथा—शूद्रक का मृच्छकटिक
3. मिश्र— इसमें कुछ अंश इतिहास पर अवलम्बित होता है और अधिक अंश कवि कल्पित होता है।

पांच अर्थप्रकृतियाँ— अर्थप्रकृतियाँ नाटकीय कथा वस्तु के पांच तत्व हैं। धनंजय और विश्वनाथ ने अर्थप्रकृति का अर्थ किया है—

प्रयोजनसिद्धिहेतवः— जो प्रयोजन की सिद्ध में कारण हो। अर्थप्रकृतियां पांच हैं—

1. बीज
2. बिन्दु
3. पताका
4. प्रकरी
5. कार्य

बीजः— बीज वह तत्व है जो वृक्ष के बीज के तरह प्रारंभ में संक्षेप में निर्दिष्ट हो और आगे उसका ही अनेक प्रकार से विस्तार हो। यह नायक के मुख्य फल का प्रमुख कारण होता है। मृच्छकटिक के प्रथम अंक में शकार की इस उक्ति— “एषा गर्भदासी कामदेवायतनात् प्रभृति तस्य दरिद्रचारुदत्तस्य”

अनुरक्ता से वसन्त सेना का चारुदत्त के प्रति अनुराग प्रकट होता है। यही इस प्रकरण की कथावस्तु की बीज हैं। बिन्दु :— अवान्तर कथा में मूल कथा के टूट जाने पर जो उसे जोड़ता है और आगे बढ़ाता है, उसे बिन्दु कहते हैं। मृच्छकटिक के द्वितीय अंक में धूतकारो के वर्णन में मूल कथा विछिन्न होने लगती है। किन्तु कर्णपूरक से चारुदत्त का प्रावारक पाकर वसन्तसेना प्रसन्न होती हैं और मूल कथा का ताँता जुड़ जाता है, यह कर्णपूरा सम्बन्धी घटना बिन्दु हैं।

पताकाः— वह प्रासंगिक कथा है जो मुख्य कथा के साथ दूर तक चली जाती हैं, शर्विलक का वृत्त मूल कथा की पताका हैं

प्रकरी :— प्रकरी वह प्रासंगिक कथा हैं जो मुख्य कथा के साथ थोड़ी ही दूर चलती हैं भिक्षुक का वृत्तान्त प्रकरी हैं। कार्यः— इसका अर्थ फल हैं। जिस फल की प्राप्ति के लिए यत्न किया जाता है जो साध्य होता है वह कार्य हैं। जैसे—रामायण में रावण का वध एवं चारुदत्त का वसन्तसेना को वधू रूप में स्वीकार करना है मृच्छकटिक की कथावस्तु का कार्य हैं। यह फल, धर्म, अर्थ, काम में से कोई भी हो सकता है इसको ही मुख्य प्रयोजन लक्ष्य आदि कहते हैं।

पांच अवस्थायैः— नाटक में जो कार्य प्रारम्भ किया जाता है उसकी प्रगति के विभिन्न विश्रामो को अवस्थायै कहते हैं। ये अवस्थायै उसकी गतिविधि को सूचित करती हैं। ये पांच अवस्थायै इस प्रकार हैं—

1. आरम्भ
2. यत्न
3. प्राप्त्याशा
4. नियताप्ति
5. फलागम

पंच संधियाँ पांचो अर्थप्रकृतियों को पांचो अवस्थाओ से जो सम्बन्ध करती हैं उन्हें संधियाँ कहते हैं ये क्रमशः अर्थप्रकृति से अवस्था का सम्बन्ध करती हैं। संधियाँ भी पांच होती हैं –

मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहतिः।

मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नार्थरससम्भवा।।

1. मुख
2. प्रतिमुख
3. गर्भ
4. विमर्श
5. निर्वहण।

नाटकों में श्रव्यकाव्यों की अपेक्षा हृदयग्राहिता, मनोरंजकता, आकर्षकता, भावाभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक होती है, अतः श्रव्य-काव्य की अपेक्षा दृश्यकाव्य अधिक जनप्रिय होता है। इसीलिए कहा गया है।
-काव्येषु नाटकं रम्यम्।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र (1-107 से 115) में नाटक के महत्व का विस्तार से प्रतिपादन किया है। उनका कथन है कि-इसमें केवल धर्म और देवों की ही चर्चा नहीं होती है, अपितु विश्व की समस्त भावनाओं का प्रदर्शन किया जाता है। इसमें जीवन की सभी घटनाओं का चित्रण रहता है, जैसे-धर्म, मनोरंजन, हास्य, युद्ध, श्रृंगार, श्रम आदि प्रत्येक दर्शक अपनी भावना के अनुकूल फल प्राप्त होता है। नाटक के द्वारा दर्शकों में उत्साह की वृद्धि होती है। अपढ़, सुपढ़ हो जाते हैं और सुपढ़ विशेषज्ञ हो जाते हैं। यह धनियों के लिए मनोरंजन, दुःखितों के लिए आश्वासन, व्यवसायियों के लिए आय का साधन और व्याकुलों के लिए शान्तिप्रद है। इसमें विविध जीवन-चर्याओं का निरूपण रहता है। यह बड़े से लेकर छोटे तक सभी के लिए हितोपदेशक, मनोरंजक और सुखप्रद है। इससे सभी का दुःख दूर हो जाता है, चाहे वह दुःखित हो, थका हो, विकल हो या साधु हो। इससे मनुष्य की सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं-धर्म, यश, स्वास्थ्य-लाभ, ज्ञान-वृद्धि और आचार-लाभ।

अबुधानां विबोधश्च वैदुष्यं विदुषामपि।। (नाट्य 1-110)

ईश्वराणां विलासश्च स्थैर्यं दुःखार्दितस्य च।

अर्थोपजीविनामर्थो धृतिरुद्विग्नचेतसाम्।। (1-111)

नाटक का उद्भव एवं विकास – नट्+ण्वुल् (अक) प्रत्यय से नाटक की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ नाट्य या अभिनय करने वाला या नटों या अभिनेताओं के द्वारा मंचन। नाटक संस्कृत की प्राचीन सशक्त एवं प्रभावशाली विधाओं में से एक सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है नाटक और मानव जीवन का सम्बन्ध सास्वत रहा है हमारे सम्मुख वर्तमान संसार एक रंगमंच है जिस रंगमंच के हम किसी न किसी रूप में पात्र हैं यहाँ पर कुछ विद्यार्थी की भूमिका निभा रहे हैं कुछ अध्यापक की तो कुछ माता-पिता और भाई-बहन की, हम सभी को परमात्मा ने एक भूमिका, एक

जिम्मेदारी दे रखी हैं, जिसको कोई किसी पात्र रूप में निभा रहा हैं अर्थात् मानव जीवन की व्यापक संदर्भों और यथार्थ जीवन के विविध आयामों से विषय चुनकर व समाज हीत के लिए ही अपने रूप का निर्धारण करता है सामान्य रूप से शब्दों तथा पात्रों की आकृति शारीरिक बनावट, वेशभूषा, भाव-भंगिमा, क्रियाओं के अनुकरण और भावनाओं के अनुरूप अभिनय तथा प्रदर्शन के माध्यम से यथार्थ जीवन को प्रकट करने की कला ही नाटक हैं। नाटक के लिए संस्कृत साहित्य में नाटय, नाटक, रूपक, रंगकर्म, रंगमंच आदि विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया हैं।

किसी भी विधा की प्राचीनता उसके प्रारम्भ, उद्भव, विकास अथवा इतिहास की जानकारी अगर करनी हो तो हम वेदों का आश्रय लेते हैं। क्योंकि वेद किसी भी दस्तावेज की प्राचीनता एवं महत्ता को स्पष्ट करने वाला अति उत्तम स्रोत हैं ऋग्वेद में यम-यमी और विश्वामित्र आदि संवाद दृश्य अभिनय से रहित वाचिक अभिनय संपन्न नाटक का ही एक रूप हैं परंतु साहित्य शास्त्र में भरत मुनि को नाट्यशास्त्र का जनक माना गया हैं उन्होंने मानव के मनोविनोद एवं सामाजिक राजनैतिक अथवा बौद्धिक विकास के लिए नाटकों ब्रह्म के आदेश से पंचम वेद के रूप में सृजित किया नाटक की स्थापना के समय ऋग्वेद से पाठ्य-संवाद कथा-उपकथा, सामवेद संगीत का सर्वोत्तम स्रोत होने से वहां से संगीत को यजुर्वेद से अभिनय को तथा अथर्ववेद से नाटक के अंतिम तत्व रस को ग्रहण किया एवं संकल्पय भगवान् सर्ववेदाननुस्मरन्।

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसंभवम्¹ ।।

जग्राह पाठ्यमृगवेदात् सामभ्यो गीतमेव च ।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थवणादपि²

महाभारत के हरिवंश पर्व में उल्लेख प्राप्त होता है कि 'वज्रनाभ, नामक राक्षस की नगरी में रामायण और 'कौबेररम्भभिसार, नामक दो नाटक खेले गए थे।' महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'कंसवध, और बलि-बंधन नामक नाटकों के बारे में चर्चा की हैं कामसूत्र नामक ग्रंथ में वात्स्यायन ने नाटककारों और नाटकों के बारे में लिखा हैं कि नटों का कार्य नागरिकों को नाटक दिखा कर उनका मनोरंजन करना हैं उन दिनों नटों का नाटक करके जीवन निर्वाह करना ही मुख्य कार्य था।

साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाटक श्रेष्ठ माना गया हैं इनकी रचना को काव्य की अंतिम सीमा कहा जाता हैं नाटक चित्रपट के समान अनेक विशेषताओं से युक्त हैं इतनी विशिष्टताएँ तो वेदों में नहीं होती रूपक में गद्य पद्य दोनों का मिश्रण तो रहता ही हैं इसे सुनने के अतिरिक्त देखा भी जाता हैं शब्द की अपेक्षा दृश्य का अधिक सघन प्रभाव होता हैं भारतीय रूपकों का उद्देश्य केवल उपदेश देना संवादों के द्वारा किसी घटनाक्रम का निरूपण करना या विषय की स्थापना मात्र नहीं हैं अपितु अभिनय के विभिन्न प्रकारों से समाज को रसास्वादन कराना भी हैं इस प्रकार नाटक का उद्देश्य अत्यंत महत्वपूर्ण हैं भरत नाटक को सार्ववर्णिकावेद, कहा हैं क्योंकि अन्य वेद केवल द्विज मात्र के लिए उपयोगी तथा उपादेय होते हैं परंतु नाटक का उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिए हैं प्रत्येक व्यक्ति इस आनंद का अधिकारी माना गया हैं नाटक का प्रभाव किसी एक ही प्रकार की अभिरुचि वाले लोग के

ऊपर नहीं होता प्रत्युत यह सार्वजनिक मनोरंजन का साधन होने के कारण समाज के लिए ग्राय तथा उपयोगी होता है नाटक का विषय भी सीमित नहीं होता प्रत्युत तीनों लोकों के भाव का संकीर्तन इसमें रहता है यह सभी हीरो के हृदय में उत्साह बढ़ाता है ज्ञानियों को ज्ञान प्रदान करता है और विद्वानों में विद्वत्ता का उत्कर्ष करता है नाटक लोक वृत्त का अनुकरण है इस विशाल विश्व के पथ पर सुख-दुख की जो प्रविधियाँ अपना खेल दिखाया करती हैं तथा मानव जीवन को सुखमय या दुःखमय बनाती हैं उन सब का चित्रण नाटक का अपना विशिष्ट उद्देश्य है इसीलिए भरतमुनि का कहना है कि कोई भी ज्ञान शील विद्या योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाटक में नहीं दिखलाई पड़ता इसीलिए कालिदास ने विभिन्न रुचि वाले लोगों के लिए नाटक को एक सामान्य मनोरंजन का साधन बतलाया है इस प्रकार आनंद के साथ चरित्र को धार बनाना नाटक का जागरूक उद्देश्य है।

काव्य को संस्कृत काव्यशास्त्रियों ने दृश्य और श्रव्य के रूप में दो वर्गों में रखा है दृश्य काव्य के दो भेद हैं- रूपक तथा उपरूपक रूपक 10 और उपरूपक 18 प्रकार के होते हैं रूपको का एक प्रमुख भेद नाटक है जो अपने अर्थ का विस्तार करके सामान्यतया आधुनिक भारतीय भाषाओं में दृश्य काव्य मात्र का अर्थ देता है इसीलिए यह नाटक शब्द बहुत व्यापक अर्थ में प्रचलित है यद्यपि संस्कृत एक सीमित अर्थ परिधि में आता है।

धनंजय का कहना है नायक आदि की अवस्थाओं का अनुकरण ही नाटक है अनुकरण का अर्थ चार प्रकार के अभिनय आंगिक वाचिक आहार्य और सात्विक से है

भरतमुनि ने नाटक की उत्पत्ति के विषय में बताया है कि ऋग्वेद से ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से संगीत यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस को ग्रहण करके पंचम वेद की सृष्टि नाटक के रूप में हुई नाटक के मुख्य भाग अभिनय संवाद नृत्य संगीत हैं और सभी का अस्तित्व बहुत पहले से ही किसी न किसी रूप में विद्यमान था जैसे यम-यमी पुरुरवा-उर्वशी सरमा-पणि आदि संवाद सूत्र में देखने को मिलता है वैदिक काल में कुछ कार्य इस प्रकार के भी होते थे जो अभिनय से युक्त हुआ करते थे

वैदिक काल के साहित्य में नाटक के मुख्य अंग प्राप्त होते थे यह कथन उपर्युक्त है कि इसकी उत्पत्ति वैदिक काल में हुई लेकिन नाटक का पूर्णतया विकसित रूप वेदों में प्राप्त नहीं होता रामायण एवं महाभारत में नाटक के अस्तित्व होने की पुष्टि होती है महाभारत के विराट पर्व में रंगशाला शब्द का प्राप्त होना इत्यादि।

नाटक का उद्भव :- भारतीय नाट्य कला को भरतमुनि ने समेटकर पूर्णता के साथ जो स्वरूप दिया है वास्तव में वह व्यापक सूक्ष्म विवेचन से परिपूर्ण तथा तात्विक है अनेक परवर्ती आचार्यों ने अपना विश्लेषण भरतमुनि के शरण में रहते हुए प्रस्तुत किया है भरतमुनि द्वारा प्रस्तुत किए गए नाट्य सिद्धांतों में मौलिकता और व्यापकता इस प्रकार व्याप्त है कि नाट्य प्रयोग में उनकी सुस्थिति सफलतापूर्वक आज भी दृष्टव्य है नाट्यशास्त्र के नाम से ऐसा लगता है कि इसमें नाट्य नियमों का उल्लेख किया गया होगा किंतु इसमें नाट्य कला नृत्य कला संगीत कला अलंकार और छंद विधान रंग निर्माण आदि नाट्य संबंधी सभी कलाओं व शिल्पो का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है नाट्यशास्त्र में भी इसकी विशालता को व्यक्त किया गया है।

नाटकों के उत्पत्ति के सम्बन्ध में "मुण्डेमुण्डे मतिर्भिन्ना" के अनुरूप अनेक मुखो से अनेक प्रकार की चर्चा चली हैं 'नित्य नया बहता नीर' समाज के सरित्प्रवाह को गतिमान बनाये रहता हैं। जैसे-जैसे नए भावों की जागृति होती हैं, वैसे-वैसे ही नाटक के रूप का नूतन उद्भावन होता रहा हैं। प्रकृति-यौवन का श्रृंगार बासी फूल नहीं कर पाते, बहुत कुछ वैसे ही विचारों के बहते नीर को लेकर आगे बढ़ते हुए नाटक को भी पुराना बना नहीं रूचता। पुरातन को अंतराल में संजोए हुए नूतन की ओर अग्रसर होना नाटक का अपना गुण विशेष रहा हैं। परंपरागत वाद, धार्मिक भावनावाद एवं लौकिक लीलावाद नाटकों की उत्पत्ति के प्रमुख तीन वाद हैं, जिनका विवरण निम्नवत् हैं—

परम्परागतवाद : भरत मत— एक युग था जब दैवीय उत्पत्तिवाद में बड़ा विश्वास था, जिसके अनुसार राज्य आदि की उत्पत्ति के सामान नाट्य-कला का आविर्भाव भी देवलोक से हुआ हैं। देवो और दानवों के मनोविनोद के लिए यश शुभार्थ, पुण और बुद्धि-वैशाद्य के लिए ब्रह्ममा ने नाट्य रचना की। इस सर्वजन ग्राह्य सार्ववर्णिक पंचम वेद नाट्य रचना को देख कर मन कष्ट-कंटको के चुभन को भूल जाय, सभी इसमें आनन्द ले सके, यही सोचकर पंचम नाट्य वेद की रचना की।

इस तार्किक युग में तर्कों की तीरों के मार से जहाँ के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लगाने लगा हो, ईश्वरीय सत्ता के समक्ष मानव की सत्ता आगे आने लगी हो तो यह स्वभाविक हैं एक दल इस बात को न स्वीकारे इस पर आस्था न रखे। इस सबसे और कुछ हुआ हो या न हुआ हो पर इतना अवश्य उभर कर सामने आया की नाट्य वेद का आविर्भाव वेदों के बाद हुआ और भिन्न वेदों से अपने लिए आवश्यक उपादान चुनकर अपने स्वरूप को शहद की तरह विचित्र स्वाद योग बनाया, जिससे मधुमक्षिका वृत्ति ने अत्यंत उपादेय नवीन स्वाद अनास्वादित नाटक रूप मधु को इन्द्रादि प्रमुखों के निवेदन —

न वेद व्यवहारोऽयं सम्भाव्यः शुद्र जातिषु।

तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी विनोदार्थ सार्ववर्णिक पंचम वेद स्वरूप नाटक सामने आया।

धार्मिक भावनावाद— इस वाद के अंतर्गत वीर पूजावाद, मेपोलवाद और कृष्णोपासनावाद मत आते हैं।

वीरपूजावाद — जाति देश और धर्म के लिए जो बलि चढ़ गए "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्" भावना से अभिभूत उन मृतात्माओं के प्रति श्रद्धा अथवा "जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" जीत गए हैं अब ये धरती का भोग करेंगे, रूप में वीर पूजा करने के लिए उत्सव मनाना भारतीय प्राचीन प्रचलन हैं इसी भावना के मूल में नाटक की उत्पत्ति के दर्शन प्रो० रिजवे ने किये हैं यह मत सर्वजन ग्राह्य न हो सका। प्रथमतः प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वान् इस सिध्दांत से सहमत नहीं। द्वितीय संस्कृत के अधिकांश नाटकों में वीरता की अपेक्षा प्रेम दर्शन की बाहुल्यता हैं।

मेपोलवाद :- डॉ० कीथ प्राकृतिक परिवर्तनों को जो साधारण के समक्ष मूर्त रूप देने की अभिलाषा को ही नाटकों के जन्म का कारण मानते हैं— विदेशों में मई का महीना आनंद और उत्सवों का मास होता हैं। भारतीय ऋतुराज वसन्त की तरह विदेशों में मई मास की ऋतु सुहावनी और मन भावनी होती हैं। प्रसन्न और उल्लासित जन समूह यत्र-तत्र एक बाँस के नीचे एकत्र हो कर सामूहिक नृत्य करते हैं जिसे 'में पोल' नृत्य कहते हैं। भारतीय इंद्र

ध्वज भी कुछ इसी प्रकार का उत्सव हैं जिससे कुछ लोग यह निष्कर्ष निकालते हैं की नाटको की उत्पत्ति का मूल देश और विदेश में उत्सव हैं क्योंकि "उत्सव प्रिया ही मानवाः" उक्ति इसी ओर संकेत कर रही हैं।

कृष्णोपासनावाद :- रथ यात्रा, रास लीला, नृत्य, गीत, वाद्य-संगीत तत्त्व कृष्णोपासना के मुख्य अंग हैं, ये ही तत्व नाटक के लिए भी हित कर रहे हैं अतः नाटको के मूल में कृष्णोपासना हैं, दूसरे नाटको में शौरसेनी प्राकृत का उपयोग हुआ हैं, जो शूरसेन देश की भाषा हैं। अतः नाटको की उत्पत्ति शूरसेन प्रदेश में कृष्णोपासना के सहारे हुई, ऐसा कुछ लोग मानते हैं।

प्रथम तो इसका कोई प्रमाण नहीं, द्वितीय अन्य देवो की उपासना की उपेक्षा हैं अतः यह मत विशेष ग्राह्य न हो सका। यह बात दूसरी हैं – "चरित्र गीतिर्नवराष्ट्र चेतना प्रसूतिः" अनुरूप पूर्वजो का स्मरण उनके प्रति श्रद्धा का अभिवंजन, विभिन्न उत्सवो और पर्वो पर मनोरंजन एवं देवी दवताओ की उपासना का नाटको के उद्भव एवं विकास में कुछ योगदान अवश्य हैं

लौकिक लीलावाद –

लौकिक लीलावाद के अन्तर्गत स्वांगवाद, पुत्तिकावाद, यूनानीप्रभाववाद एवं सुक्त्वाद मत आते हैं।

नाट्योत्पत्ति के सिद्धांत :- भारतीय संस्कृत एवं नाटको के उत्पत्ति एवं विकास के सम्बन्ध मे भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने अनेक मान्यताये प्रस्तुत की हैं। इनका विवेचन इस प्रकार से हैं—

दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त :- भारतीय विद्वानों के अनुसार भरत के नाट्यशास्त्र का आधार देवमूलक या धर्म देवमूलक हैं देवताओं द्वारा सभी प्रकार से श्रेष्ठ युग में रहने पर भी जिन्होंने शोक की कभी कल्पना भी न कि हो, वह जो कि कला से सम्पन्न प्रसन्नता के सामान आवश्यक हैं तथा इन्हें आनंद प्रदान करने वाले किसी प्रकार के साधन की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वे सभी प्रकार के सुख व वैभव से संपन्न थे ब्रह्मा से एक ऐसी वस्तु की रचना हेतु प्रार्थना की गई जो चारों वेदों के समान पंचम वेद हो और यह सभी को कानो तथा नेत्रों द्वारा समान रूप से आनंद प्रदान कर सके तथा मात्र 'ब्राह्मण' ही नही अपितु 'शूद्र' भी इससे लाभ प्राप्त कर सके 'ब्राह्मण ने निवेदन सुना और उस कार्य को पूरा करने के लिए ऋग्वेद से ऋग्वेद सामवेद से गीत यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद रसतत्त्व को ग्रहण किया और देव विश्वकर्मा को प्रेक्षागृह के निर्माण हेतु कहा। देवता इस रचना को पाकर अत्यंत प्रसन्न हुए इसमें शिव ने 'रौद्र' रस को अभिव्यक्त करने के लिए तांडव नृत्य का पार्वती से सुकुमार व श्रृंगारिक लास्य का, तथा विष्णु ने चार नाट्य वृत्तियों का आविष्कार कर अपना-अपना योगदान दिया इस नई रचना में हिन्दू त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा विष्णु और महेश का योगदान था इस बात से यह बताने का प्रयास हैं कि यही नाट्य वेद ही पंचम वेद के रूप में जाना जाता हैं

खण्डन :- दैवीय उत्पत्ति खोजने की भारती प्रवृत्ति का कारण हो सकता हैं कि यह परम्परा बहुत पहले रही हो किंतु समर्थ प्रमाण के अभाव में यह कल्पना मात्र ही रहेगी इसके लिए कोई निर्णायक आधार प्रस्तुत नहीं किया जा सकता इससे यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक हैं कि वैदिक साहित्य में नाटक का अभाव माना गया था इसलिए

देवताओं को एक सर्वथा नवीन साहित्य रूप की जो वैदिक युग के परवर्ती काल के लिए उपर्यक्त हो सृष्टि के लिए ब्रह्मा से प्रार्थना करनी पड़ी।

भार्गव इन्द्र की स्तुति करता है। 1/179 में अगस्तमुनि का अपनी पत्नी लोपामुद्रा और पुत्र के साथ प्रहेलिका रूप में वार्तालाप, 10/28 में इन्द्र व शुक्र का दुर्बोध कथोपकथन 4/18 में इन्द्र अदिति व कामदेव का गड़बड़ संवाद 10/86 में इन्द्र—इंद्राणी और वृषाकपि का प्रसिद्ध वाद—विवाद 10/108 में इन्द्र की दूती सरमा द्वारा गाय खोजने एवं असुरों से रोचक वाद—विवाद, 10/51/3 में देवताओं द्वारा अग्नि को समझाना विश्वामित्र और नदियों का वार्तालाप 3/33 में वशिष्ठ का अपने पुत्रों के साथ संवाद अर्थपूर्ण हैं।

इस प्रकार सभी कला रूपको की तरह, नाटक में दर्शकों के हृदय को प्रेरित करने कल्पना को उत्तेजित करने और रचनात्मक और अभिव्यंजक क्षमता तक पहुंचाने के लिए प्रोत्साहित करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास डॉ कपिलदवे द्विवेदी
2. नाट्यशास्त्र—भरतमुनि चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी
3. नाट्यशास्त्रीय परम्परा तथा दसरूपक ज्ञानदेवी श्रीवास्तव, शिव पब्लिशर्स इलाहाबाद
4. साहित्यदर्पण— विश्वनाथ, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
5. धनंजय कृत दसरूपक साहित्य भण्डार मेरठ